भगवत् कृपा

स्वामी नारायण

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-5, अंक-3-6	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-25.00
गुरुवार, 25 जून' 81	मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 2.25

आषाढ़ी पूर्णिमा-गुरुपूर्णिमा

मुक्तिपंथ के यात्रियों-श्रेयार्थी सेवकों के लिये जीवन में दो अवसर महामंगलकारी माने गये है; एक गुरुजयंती और दूसरा गुरुपूर्णिमा-आषाढ़ी पूर्णिमा। क्योंकि—जो सत् है, शुभ है, सात्त्विक है इनका वर्णन तो शास्त्रों में निहित है, परन्तु केवल शब्द मात्र से वह स्पष्ट नहीं हो सकता। इनका स्वरूप प्रत्यक्ष होना चाहिए, जो कि हम देख सकें, सुन सके, स्पर्श कर सकें ! सच्ची साधुता जिनमें स्थिर हुई हो ऐसे भगवत्स्वरूप संत—सद्‌गुरु होने ही चाहिये—जीवंत और प्राणवंत ! इसलिये जगतभर के हरेक सम्प्रदाय एवं धर्मशास्त्र में भगवत्स्वरूप संत—सद्‌गुरु की महिमा गायी है।और.... गुजरात की धरती पर वड़ताल के करीब 'बामणोली' गाँव के खेत में भगवान स्वामिनारायण ने अपने आश्रित संतों को खूब आग्रहपूर्वक भोजन करवा कर इनकी प्रदक्षिणा करके स्वयं दंड़वत प्रणाम किया है। संतों की महिमा का ऐसा समर्थन जगत के इतिहास में बेमिसाल है।

ऐसे संत के दर्शन मात्र से पाप के पूंज सरीखे मनुष्य सात्त्विक एवं निर्मल बन गये होने के अनेक उदाहरण है। ऐसे पवित्र संत के संबंध से राजसत्ता का, विद्वता का, धन का, कुलीनता का—कई प्रकार का अहं भी पिघल जाता है। इसी कारण पहले के जमाने में राजाएं संत को राजगुरु के रूप में स्वीकार कर इनकी आशीष और सलाह से राज कारोबार करते थे। विद्वद्‌गुण भी संतों के प्रति झुकते थे और धनश्रेष्ठियाँ संतों की भगवत् संपत्ति के पास अपनी संपत्ति को तुच्छ समझते थे। हम जानते हैं कि शिवाजी जैसे वीर की प्रेरणामूर्ति स्वामी रामदास थे। जॉन ऑफ आर्क ने सेंट माईकल और सेंट केथरिन के उपदेश से ही बल प्राप्त किया था, गुरु गोविन्द सिंह के जीवन पर गुरु नानक के उपदेश का और सम्राट अशोक पर भगवान बुद्ध का प्रभाव था। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्रजी ने ब्रह्मर्षि वशिष्ठ, पूर्ण पुरुषोत्तम श्री कृष्णचंद्रजी ने साँदिपनी गुरु और सर्वावतारी भगवान श्री स्वामिनारायण ने रामानंदस्वामीजी को गुरु के रूप में अपना कर गुरु 'गुरु बिन गत नाहीं, उक्ति का समर्थन किया है।

अपूर्व बलसंपन्न और महत्त्वाकांक्षी सिकंदर एवं नेपोलियन की अदभ्य हिंसावृत्ति को चरितार्थ करती तलवारों का नहीं, किन्तु जगकल्याण के

लिये क्रोस के मंच पर शहीद हुए ईसा मसीह के मधुर शब्दों का मानवहृदय पर अधिक आधिपत्य है—अधिक प्रभाव है। जो समाज अपने संतों का सम्मान करता है, इनके उपदेशों और आदर्शों पर चलता है वही समाज अधिक उन्नत, अधिकतर निर्मल और सत्यशील बन सकता है। भारत के इतिहास का सबसे महान युग वही था, जबकि सारी प्रजा—राजा एवं रंक—सभी, ऋषि-मुनियों का—संतों का सम्मान करती थी, श्रद्धा और गौर से इनके आदेशों पर चलती थी। आज भी हरेक हिन्दु अपने आपको कोई न कोई प्राचीन महर्षि की संतान मानता है और प्रत्येक धर्मकार्य में अपने गोत्र और ऋषि का स्मरण करता है।

सामान्यतः तो सुख-दुःख, मान-अपमान, जय-पराजय वगैरे द्वन्द्वों से परे की स्थित को ही साधुता का उच्च आदर्श माना गया है और जगत में ऐसे द्वन्द्वातीत एवं आत्मनिष्ठ विभूतियों को सच्चे संत मान कर लोग इन्हें अनुसरते भी है। ऐसे संत को अनुसरने से इनकी स्थिति को हम अवश्य पाते हैं, परन्तु हम में ब्रह्मभाव नहीं आ सकता, भगवान के—परब्रह्म के अखण्ड धारक हम नहीं हो सकते। द्वन्द्वों से परे तो सद्‌वाचन, सत्समागम, आत्मनिष्ठा आदि साधनों से भी हो सकते हैं। परन्तु ब्रह्मभाव तो ऐसे प्रगट ब्रह्मस्वरूप संत के संबंध से ही हम में प्रगट हो सकता है।

और.....आध्यात्मिक इतिहास के पन्ने पर ऐसी भगवत्स्वरूप—ब्रह्मस्वरूप विभूतियों की परम्परा यदि किसी ने अखण्डित रखी हो तो वह केवल भगवान स्वामिनारायण ने ! इस विरासत द्वारा सच्चे भगवत्स्वरूप संत की—सद्‌गुरु की प्रणाली ज्योत से जलती ज्योत द्वारा पृथ्वी पर अखण्ड रही ! **'गुणातीत' इनकी परंपरा है, नैसर्गिकी नेचुरल ब्राह्मीस्थिति इनकी प्रणाली है और 'इन के द्वारा भगवान का प्रागट्‌य इनका प्रमुख गुण है।**

परोक्ष के आदर्श संत भी अनेक जन्मों के संस्कार से प्रगति करते रहते हैं। और इस प्रगति के लिये जन्म लेते रहते है। वे केवल लोककल्याण हेतु धरती पर नहीं आते, परन्तु अपनी साधना पूर्ण करने हेतु ही आते हैं। और इस दौरान इनके संबंध में आते हुए लोगों का सहजस्वभाव उद्धार भी अवश्य करते हैं। समाज में नितिधर्म, संस्कार, भक्ति, ज्ञान, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि सद्‌गुणों का प्रचार-प्रसार करने हेतु इन्होंने खूब-खूब किया है और अनेक पतित जीवों का उद्धार किया है; किन्तु कारण शरीर के भाव टाल कर आत्यंतिक कल्याण तो भगवान स्वामिनारायण के ''गुणातीत संतों'' ने ही किया है।

भगवान स्वामिनारायण की इस गुणातीत पीढ़ी के नैमिषारण्य क्षेत्र[1] सरीखे ब्रह्मस्वरूपसंत और सिद्धपुरुषों में भी आकाश और पाताल का अंतर है। इस लोक के हमारे मनोरथ पूरे करे और पंचमहाभूतों पर अपना आधिपत्य जमा कर हर प्रकार की सिद्धियों को अपने वश में करे वह है सिद्धपुरुष। मतलब है कि-सिद्धियां जिन्हें वरणीय हुई हो वे सिद्धपुरुष और प्रभु जिन्हें वश हुए हो वे संतपुरुष है। ऐसे संत की नैसर्गिकी ब्राह्मीस्थिति है। वे ही सच्चे गुरु हैं। और....ऐसे संत भगवान से भिन्न नहीं है !

इस प्रकार भगवान स्वामिनारायण ने ऐसे संत द्वारा धरती पर अपना प्राकट्‌य यावच्चन्द्रदिवाकरौ—सदा काल के लिये कर दिया! एक अकल गति से महाराज पृथ्वी पर रहे ! जीवंत और प्रगट स्वरूप में रहकर वे आज भी अपना अवतार कार्य आगे बढ़ा रहे है ! एक

1. वचनामृत-सारंगपुर प्रकरण-7

आश्चर्य अवश्य हैं, पर साथ ही साथ एक अनौखी हकीकत भी है !

परन्तु ऐसे संत की पहचान अति मुश्किल है।

1. वचनामृत-सारंगपुर प्रकरण,7

संत तो दरअसल अपनी आंतरिक अनुभूति के कारण संत हैं। अतः संत को पहचानने के लिये तो संत ही होना पड़ता है। संत तुलसीदासजी ने यहां तक कह दिया है—

'जो कोई कहे संत को चिन्हा (जाना), तुलसी हाथ कान पर दीन्हा'।

हाँ, इतना अवश्य है कि हमारी यदि आंतरिक श्रद्धा होगी, तो सच्चे संत के प्रथम संपर्क में आते ही वे हम पर इतनी करुणा बरसा ही देते हैं कि— हमारा दिल गवाही देने लग जाता है कि हम एक अपूर्व शक्ति के समीप हैं, अंतर में दिव्यता का अनुभव होने लगता है, अपार शांति महसूस करने लगते है....और इनके प्रति एक खींचाव— आकर्षण हो जाता है, आत्मीयता प्रतीत होती है कि यह संत मेरे हैं और हम इनके हैं।

हमारा महत् सौभाग्य है कि ऐसी नैसर्गिकी ब्राह्मीस्थिति सम्पन्न प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी, प.पू. हरिप्रसादस्वामीजी और प.पू. महंतस्वामिजी द्वारा इस परम्परा को जानने का देखने का, अनुभव करने का हमें लाभ मिला है। इन्होंने हमें अपनी गोद में बिठा दिये हैं, इससे अधिक परम सौभाग्य भी कौन सा हो सकता है?

अब कर्तव्य हमारा है कि चिंतामणि हाथ लग जाने के बाद उसे खोनी नहीं है, न हमें कंगाल भी रहना है। जो सम्बन्ध हुआ है वह खोना नहीं है, प्राप्ति के आनंद में हमेशा मगन रहना है। ऐसे संत के प्रति दृढ़ लगाव से जुड़ जाकर जीव को कृतार्थ कर देना है।

गुरुपूर्णिमा का परमपवित्र पर्व आ रहा है। गुरुपूजन करके आशीर्वाद प्राप्त करने का यह शुभ दिन है। गुरु और शिष्य के सम्बन्ध की गाढ़ दृढ़ता करने का यह प्रेरणात्मक दिन है। इस परम मंगलकारी दिन केसरचंदनार्चन, भेंटसामग्री—पुष्पार्पण आदि नौ प्रकार की भक्ति से सभी शिष्य अपनी श्रद्धानुसार गुरुपूजन करके गुरुभक्ति अदा करने का यत्न करते हैं।

परन्तु, गुणातीत स्वरूप सन्त कैसी भक्ति से प्रसन्न होते हैं, यह जानना जरूरी है। प्रकृति के कार्य से उत्पन्न पदार्थों, सेवा, स्वागत, जलूस, सम्मान, हारमाला आदि से वे प्रसन्न नहीं होते है। हमारे अनादि गुरु गुणातीत तो और प्रकार के गुरुपूजन की ही इच्छा रखते हैं। 'भक्ति' शब्द ही अटूट एकता का ख्याल देता है। शिष्य अपनापन (स्व) भूल कर गुरु के चरणों में अपना सर्वस्व का....समग्र का समर्पण करके जीवन जीये यही सच्ची गुरुभक्ति है। यहाँ किसी भी प्रकार का व्यावहारिक भाव टिक नहीं सकता, न कोई इच्छा टिक सकती है। किस प्रकार मेरे गुरुदेव प्रसन्न हो यही एक भावना शिष्य के मन में रहती है और ठीक इसी प्रकार उसका व्यवहार रहता है। यही है सच्चा गुरुपूजन—सच्ची गुरुभक्ति !

तो, अपनी प्रकृति, अपने स्वभाव, अपनी वृत्ति के बस में आकर कहीं ऐसा सम्बन्ध हम गवां न दें, सन्त की निगाहों में से—नजरों से कहीं हम गिर न जायें यही इसी गुरुपूर्णिणा के महामंगलकारी अवसर पर प्रत्यक्ष सद्‌गुरु देव के पास मांगना है।

एक बार ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज को एक सेवक ने पूछा था—ऐसा भव्य सम्बन्ध होने के बाद हमें क्या करना बाकी रहता है। तब प.पू. योगीजी महाराज ने कहा था—''भक्तों को तो भजन-स्मरण ही करना है, बाकी सब महाराज स्वामी और शास्त्रीजी महाराज कर लेंगे। मतलब की—जो सम्बन्ध हुआ है उसे संभालना है, भजन-स्मरण से दृढ़ कर लेना है। परन्तु महिमा नहीं समझते हुए हम ऐसे भव्य सम्बन्ध को भूल जाते हैं—तोड़ देते

हैं—खो बैठते हैं। कैसे? तो—

1. कैसे ही व्यावहारिक विपरीत संजोग में—परिस्थिति में या आंतरिक उलझन में—सूक्ष्म के भावों के ताँडवनृत्यों में भव्य संबंध को भूल कर ग्लानि, चिंता, भय, शोक या उदासीनता में फंस कर भजन स्मरण के सिवा और कोई आधार लेना, आकार देखना यह हम 'सम्बन्ध' भूल गये—'सम्बन्ध' खो बैठे।

2. मेरी रक्षा होगी या नहीं?
मेरी प्रार्थना सुनते होंगे या नहीं?
मेरा कल्याण होगा या नहीं?
मरने के बाद मेरी क्या गति होगी?
संत मेरे पर प्रसन्न रहते होंगे या नहीं?
मुझे याद करते होंगे या नहीं?

इस प्रकार की निराधार अवस्था में खोयें रहना—डूबे रहना यह भी हमने ऐसी 'भव्य प्राप्ति' को ठुकरा दी बराबर ही है।

3. भगवत्स्वरूप सन्त की सेरे छाया मिल जाने के बाद भी काल, कर्म, और माया का हम पर प्रभाव पड़े; ग्रह, पनोती, ज्योतिष, जादू-टोने वगैरह प्रति निगाह भी जाये यह हमने प्रभु से हमारा 'सम्बन्ध' तोड़ा बराबर ही है।

4. जब धाम, धामी और मुक्त ही सत्य है, तब इनके सिवा और कहीं सत्य की भ्रांति हो या इनकी सेवा के अतिरिक्त और कहीं कुछ व्यवहार करने का मन हो; भजन-भक्ति-सेवा के अलावा ग्राम्यवार्ता में हम समय व्यतीत करें यह भी हमने 'सम्बन्ध' तोड़ दिया।

5. भगवत्स्वरूप सन्त का सम्बन्ध होने के बाद मनमाना करना—सेवा भक्ति भी मनमानी करनी वह साधना मार्ग में बड़ा विघ्न है। क्यों कि मनमाना करने से अपने राग-आसक्ति-स्वभाव और वृत्तियों की पुष्टि होती है और आखिर वह सेवक भगवत्स्वरूप सन्त से दूर होता जाता है, 'सम्बन्ध' खोता जाता है। स्वामिनारायण संप्रदाय गुरुमुखी संप्रदाय है। गुरु गुणातीत के हरेक संकल्प, भाव और क्रिया महाराजमय थे, प्रभुप्रेरित थे, केवल प्रभु के अधीन थे। महाराज की तरफ ही निगाह रख कर वे जीवन जीये और सभी को गुरुमुखी रहने का आदेश दिया। गुरुमुखी रहना यही निष्काम भक्ति है, यही सच्ची साधना है और ऐसे सेवकों का 'सम्बन्ध' भगवत्स्वरूप संत के साथ दिनप्रतिदिन बढ़ता जाता है।

6. जिस दिन से ऐसे भगवत्स्वरूप संत के सम्बन्ध में आये हैं, उसी दिन से—उसी पल से हम अक्षरधाम में बैठे हैं। 'देह छोड़ कर जिन्हें पाने थे वे इसी जीवन में मुझे प्रत्यक्ष मिल गये हैं'—यूं दिल से मान कर जीना यही है सच्चा 'संबंध' ! कोटी साधन करने के बाद भी जिनके दर्शन शक्य नहीं, वे केवल करुणा से मिल गये.....फिर भी, तप-त्याग, व्रत, योग, पाठ, जागरण, ज्ञान, वैराग्य आदि साधनों का हम पर प्रभाव पड़े, यह भी 'सम्बन्ध' को भूले के बराबर ही है—एक पाप ही है। प्रत्यक्ष पुरुष की प्राप्ति में ही सभी साधनों की पूर्णाहुति है।

7. जैसा भव्य सम्बन्ध हमें हुआ है वैसा ही सम्बन्ध सत्संग के अन्य भक्तों आश्रितों को भी हुआ है। जैसी हमारी जिम्मेदारी ऐसे सन्त ने ले रखी है। सन्त जैसे हमें आगे ले जाने को लगे हैं वैसे अन्यों के लिये भी प्रयत्नशील हैं तो ऐसे ब्रह्मस्वरूप सन्त नियंत्रित समाज के सभ्य होने के बाद अन्य के दोष, स्वभाव, प्रकृति, क्रिया को देखें या इस बारे सोचे, दूसरों के पास बोलें—टीकाचर्चा करें तो फिर हम यह भव्य 'सम्बन्ध' को भूल ही गये न? फलस्वरूप ऐसे सन्त के करीब रहते हुए भी इनकी करुणा—आशीष को लूंट नहीं पाते। इतना ही नहीं, करी हुई सेवा, भक्ति का फल पाने के बजाय, पाप की गठरियाँ सिर पर बाँधते हैं

8. हरेक सेवक का अपनी निजी प्रकृति के अनुसार सन्त से सम्बन्ध रहता है। कोई प्रीति से जुड़ा होगा, कोई विश्वास से तो को समझ से। हरेक के अपने-अपने ढंग होते हैं और संत भी उसी प्रकार अलग-अलग ढंग से हरेक को अपना सम्बन्ध दृढ़ करवा लेते हैं। हरेक सेवक का सन्त से व्यवहार भी अपनी प्रकृति के ढंग से ही रहेगा। ढंग कैसा भी हो, आखिर वह ढंग नहीं वरन् सन्त से जो सम्बन्ध दृढ़ हुआ है, वह काम करने वाला है। तो जब हम यूं समझें कि जिस ढंग से–जिस प्रकार मेरा सन्त से सम्बन्ध है या जिस ढंग से–जिस प्रकार मैं सत्संग कर रहा हूँ वही सही है और इससे भी आगे जाकर जब हम किसी के प्रति आग्रह रखें कि यह सेवक भी इसी प्रकार ही सन्त के सम्बन्ध रखें या सत्संग करें–तो वह हमारी कोई वृत्ति ही है। हम सन्त के 'सम्बन्ध' को भूल गये.....।

9. 'संप, सुहृद्‌भाव और एकता' भगवत्स्वरूप सन्त को खूब पसन्द है। विशिष्ट प्रकार के पूजन का रहस्य यह भी है कि सन्त की मरजी में रहना। गुरु की मरजी में यदि हम नहीं रहे, तो गुरुभक्ति ही नहीं। तो यदि हम–

1. किसी भक्त की बुराई करें,
2. किसी भक्त की लापरवाही करें,
3. किसी भक्त के स्वभाव-प्रकृति नहीं जंचने पर उससे मिलजुल कर रह नहीं पायें,
4. मौके पर धीरज खो कर कुछ अंट शंट बोल बैठे,
5. किसी भक्त से कोई बात पर अड़ जायें,
6. पीछे हठ न कर पायें, तथा
7. प्रसंग पर अंतदृष्टि करके अपना दोष न देख पायें।

–ऐसी सभी मानसिक अस्थिरताओं से संप, सुहृद्‌भाव और एकता का भंग होता है। त्यागी हो या गृही, परन्तु अपना लौकिक व्यवहार लौकिक ढंग से करने पर ऐसी झंझट होती है। यदि सद्‌गुरु के प्रति–भगवत्स्वरूप सन्त के प्रति हमारी निगाह रहेगी कि कुछ भी हो, मुझे ऐसा भव्य सम्बन्ध खोना नहीं है, किसी भी कीमत पर इनकी प्रसन्नता पानी ही है, तो कोई परेशानी रहेगी नहीं। कोई सुहृदभाव रखें या नहीं रखें इस बारे चिंता करे बिना अपनी हठ, मान, और ईर्ष्या छोड़ कर–सन्त की सत्ता को मान कर यदि हम झुक जायेंगे, यदि हम सुहृद्‌भाव छोड़ेंगे नहीं, तो सन्त की दिली प्रसन्नता के पात्र बन ही जायेंगे। सन्त की निगाह में बसे रहेंगे, बिना माँगे सन्त से आशीष मिल जायेगी।

यह भी एक सही अर्थ में गुरुपूजन है।

तो, अब इस गुरुपूर्णिमा निमित्त **दिनांक 19 जुलाई, रविवार की सुबह** अशोकविहार मंदिर में विशिष्ट महापूजा सह सत्संग का आयोजन किया गया है। इसी महामंगलकारी अवसर मंदिर में सद्‌गुरुवर्य प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी की नई मूर्ति प्रतिष्ठित की जायेगी।

आईये, हम सब इकट्‌ठे होकर इनकी समक्ष इस परम पवित्र अवसर पर आज तक की करी हुई गल्तियों की क्षमायाचना करें और उपरिलिखित नौ पाईन्ट्‌स से किसी भी प्रकार हमारा सम्बन्ध ऐसे परमपवित्र अवतार पुरुष से टूटने नहीं देने प्रतिज्ञाबद्ध होकर सर्वोच्च प्रकार से गुरुपूजन करें....और प्रार्थना करें कि–

नजरों से गिराना ना, चाहे कोई सजा देना,
नजरों से जो गिर जायें, मुश्किल है संभल पाना।

(6)

My Master, I and Panchyagna

His Divinity Dadukakaji is one of the spiritual successors of my Gurudev his Divinity Yogiji Maharaj and is not only a truly realised and emancipated soul but also a real Supreme Master, enjoying permanent communication with Almighty and is working ceaselessly and tirelessly for the upliftment of the Sadhakas in particular and by his association with several socio-religious orgnaisations for the humanity in general. This is entirely due to the Supreme Real Ultimate Experience and Realisation (Samadhi) on 3-2-1952 purely by the infinite love, grace and compassion of his beloved Gurudev H.D. Yogiji Maharaj who firmly and positively induced him to have the eternal idenfification and equivalence with Eternal Brahman and at the same time to realise the Sovereign Supremacy and infiniteness of 'Paratah-Par', i.e. Purushottam Narayan. We say authoritatively that he is really a Brahmaswaroop and Parabrahman manifests in himself always and by all means and respects as has been mentioned in Vach. F. 27. Inspite of attaining this highest most ideal state of consciousness of Natural Bliss, i.e. Sahajanand-consciousness enjoying complete power, peace and assuming divine qualities, he still remains transcended in ever evpanding infinite vastness as a result of which the humbleness of the highest class known as Swamisevakbhav is naturally and firmly established in his life which is a brilliaant example and ideal symbol for all of us.

The most outstanding charcteristic of the process of H.D. Dadukakaji is the authenticity and forthrightness and avaliability of a variety of formulae for all categories of people searching for salvation and peace of mind.

It is unique and fully intergrated by its revolutionary principles, yet a true symbol of the spiritualism in its right perspective and total divine vision. He has been putting emphasis on the transcendental oneness with the whole and a prayerful intense aspiration of the heart rather than any short of effort by the mind. So the spiritual progress is attained automatically in a natural manner by the grace of Real Master to whom the Sadhaka is required to surrender with full understanding and love-intimacy. This type of surrender is creative and dynamic and yet very humble and polite, with the intergrated unity in diversity of this life and universe.

His process is revolutionary, setting aside all conventional doctrines and orthodox principles, rituals and yet his process is simple and easy to follow and practise whether layman or advanced Sadhakas for all categories of people, or those following Shuddh Vedantic ideal and philosophy. He very authentically extends and open invitation to any truth seeker to practise his Panchayagna for seven days under his guidance and realise the outcome by himself. With creative surrender and full trust in God and the Master, his Panchayanga makes you totally immune from fear and other Miseries, calamities, pains and tensions: Thus this proves to be more powerful than a nuclear weapon and bestows complete security and fearlessness and in spite of uplifting us to this highest state of consciousness he offers us all to work for the humanity as partners and co-

sharers in his Divine Play. This reflects the nobility, humility and magnanimitin of the Real Brahmaswaroop Saint. I have full conifidence and faith in the effectivity and fruitfulness of the working of H.D. Dadukakaji because he is a truly Supremely Realised Soul and where the Master is perfect, success must come from any corner provided the Shishya responds to him in the right manner.

Whatever I am at present is entirely due to the motherly love and passionate affection showered on me by H.D. Dadukakaji. Without his painstaking efforts and invaluable guidance I would not have remained in safron robes and my very strongly jealous and most adamant and unrelenting nature would not have been changed. I also acknowledge the tremendous help and guidance by H.D. Hariprasad Swamiji during this peroid.

My initiation in this robe in 1961 at the hands of my Gurudev H.D. Yogiji Maharaj was also due to the blessings of H.D. Dadukakaji. I came in his contact for the first time in 1955 at a function in Sunderabai Hall in Bombay. It was like an event of 'Love at first sight' and since then all through these years he has nourished me and protected me and has given me immense strength and necessary vision to underst and my Gurudev H.D. Yogiji Maharaj. The Supreme Sun was there but I did not have the technique to concentrate and generate power which H.D. Dadukakaji taught me and helped me to see the reflection of the same sun dwelling in my heart. He has made me fearless and powerful though I have not yet reached the Ultimate stage of Gnan Samadhi, I am confident that I shall be able to attain it under his able and valuable guidance and will become totally free and emancipated Real Ekantik Siddha.

I humbly do admit that the new concepts of Suryabhedan, Sakshibhav, Abhedgan, Sachetan Sakriya Sakshibhav, i.e. witnessing spirit endowed with equanimity and creativity, creative surrender, etc. are beyond the scope of my intelligence and understanding. However, from my series of experiences, I firmly believe that it is easy to become his child or his son with natural love and affection.

I strongly recommend to everyone to adopt this approach and rely on him only with total trust and carry out the Smrutiyagna properly as shown by him. I can say this because I fell that I have changed tremendously though I have not entered the No mind's land'. Nobody except. H.D. Yogiji Maharaj and H.D. Dadukakaji can dare to take full responsibility for the complete transformation of my crude and strange nature. I put emphasis on this point from the successful transformation by H.D. Dadukakaji of another dynamic and brilliant aspirant Shri Mahendre Shah (Mahendrababu) who was once a very wayward and rustic youth like myself. Today we have been brought together to complete our Sadhana and reach to the highest state of Sahejanand Conseiousness.

As I have trusted him from the beginning and as he has chosen me for this purpose, I feel completly safe and contented. With this masterful technique of Panchyagna. I am sure, I will be led to the state of Ultimate Perfection which he wants me to attain as soon as possible on the principles of Suhridbhav.

Regd. No. D (D) 655

So let us grab this unique opportunity guidance and be happy and prosperous by to tread this novel path under his able all means in this life.

The Extract from
forward-'PANCHYAGNA'

Statement about Ownership and other particulars about news paper

'भगवत-कृपा'– **'THE DIVINE GRACE'**

(Form IV Rule 8)

1. Place of Publication	:	Yogi Divine Society A-103, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052
2. Periodicity of its Publication	:	Monthly
3. Printer's Name	:	Sadhu Mukund Jivandas
Nationality	:	Indian
Address	:	Yogi Divine Society A-103, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052
4. Publisher's Name	:	
Nationality	:	As above
Address	:	
5. Editor's Name	:	
Nationality	:	As above
Address	:	
6. Owner's Name	:	
Nationality	:	As above
Address	:	

I, Sadhu Mukundjivandas, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Sd/-
Sadhu Mukundjivandas
Signature of Publisher

Date: 25th March, 1981

व्रतोत्सवसूची

1. दि.	12.7.81	रविवार	देवशयनी एकादशी, व्रत, चातुर्मास, प्रारम्भ, आज चातुर्मास के विशिष्ट नियम लिये जाते हैं।
2. दि.	17.7.81	शुक्रवार	गुरुपूर्णिमा—आषाढ़ी पूर्णिमा
3. दि.	19.7.81	रविवार	अशोक विहार मंदिर में गुरुपूर्णिमा निमित्त उत्सव और मंदिर में प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी मूर्तिप्रतिष्ठापन
4. दि.	27.7.81	सोमवार	कामिका एकादशी, व्रत

Published by Sadhu Mukundjivandas for Yogi Divine Society,
A 103, Ashokvihar-III, Delhi-110 052. India, Tel. 718838
Printed at Thakkar printing press, 2588, Basti Punjabian, Subzi Mandi, Delhi-110 007 Phone : 524058